विक्रम संवाद

पाक्षिक आलेख सेवा/निःशुल्क वितरण के लिए

सम्पादक

महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ

बिड़ला भवन, देवास रोड, उज्जैन-456010

फोन : 0734-2521499, 0755-2660407

Email : mvspujjain@gmail.com
vikramadityashodhpeeth@gmail.com

Web : www.mvspujjain.com

इस अंक में

पृष्ठ क्र. 1-2

अजंता का वैभव और विश्व कला
मनीष कुमार बरफा

पृष्ठ क्र. 3-4

जनपदों का परवर्ती विकासः राष्ट्र का उदय
विजय परिहार

पृष्ठ क्र. 5-6

प्राचीन भारत की कृषि सामाजिक व्यवस्था
यतीन्द्र तिवारी

पृष्ठ क्र. 7

उज्जयिनी का शक सातवाहन काल
डॉ. किरण शर्मा

पृष्ठ क्र. 8

साहित्य में वर्णित इंद्रप्रस्थ
मिथिलेश यादव

अजंता का वैभव और विश्व कला

मनीष कुमार बरफा

भारत की समृद्ध कला परंपरा में अजंता गुफाएँ एक अमूल्य धरोहर हैं। ये गुफाएँ भारत के प्राचीन वैभव, सांस्कृतिक विरासत और कलात्मक उत्कृष्टता का सजीव प्रतीक हैं। अजंता की गुफाओं का निर्माण मुख्य रूप से वाकाटक राजवंश और गुप्त राजवंश के राजाओं के संरक्षण में किया गया था। वाकाटक वंश के राजा हरिषेण (लगभग पाँचवीं शताब्दी) ने अजंता की कई गुफाओं के निर्माण और इनमें मौजूद चित्र वह शिल्पों का संरक्षण किया। यह वंश दक्षिण भारत में प्रभावशाली था और उन्होंने बौद्ध धर्म को बढ़ावा दिया। यहाँ की प्रारंभिक गुफाओं का निर्माण दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व सातवाहन राजाओं के शासनकाल में हुआ। ये गुफाएँ मुख्य रूप से हीनयान बौद्ध धर्म से संबंधित थीं। गुप्त काल में अजंता की गुफाओं को विस्तार मिला और इसमें महायान बौद्ध धर्म से संबंधित चित्र और मूर्तियाँ शामिल की गईं। इन गुफाओं का निर्माण बौद्ध भिक्षुओं ने ध्यान और अध्ययन के लिए किया। प्रारंभिक गुफाएँ हीनयान बौद्ध धर्म से संबंधित थीं, जिनमें साधारण वास्तुशैली का पालन किया गया। बाद में महायान बौद्ध धर्म के प्रभाव से गुफाओं में चित्रकारी और मूर्तिकला का समृद्ध विकास हुआ। अजंता गुफाओं में स्तूप, विहार और चौत्यगृह जैसी संरचनाएँ हैं। ये वास्तुकला के अद्भुत उदाहरण हैं, जिन्हें चट्टानों को काटकर बनाया गया है। मूर्तिकला में बौद्ध धर्म के विभिन्न पहलुओं को दर्शाया गया है, जैसे बुद्ध के जीवन की कथाएँ, जातक कथाएँ और बोधिसत्व की आकृतियाँ। मूर्ति और संरचनाओं की बारीक नक्काशी, चेहरे के भाव और मुद्राएँ इतनी जीवंत हैं कि वे गहराई और दिव्यता का अनुभव कराती हैं। हर मूर्ति में शांति और सौंदर्य का समन्वय देखने को मिलता है।

अजंता की दीवारों पर बनायी गयी चित्रकलाएँ यहाँ की सबसे प्रमुख विशेषता हैं। इन चित्रों में प्राकृतिक रंगों और बारीक ब्रश तकनीक का उपयोग किया गया है। चित्रों का मुख्य विषय बौद्ध धर्म और उसके दर्शन को चित्रित करना है। जातक कथाओं पर आधारित ये चित्र मनुष्य के आदर्श जीवन और उसके धार्मिक पक्ष को दिखाते हैं। मानव आकृतियों, पशु–पक्षियों और प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण इतनी सूक्ष्मता से किया गया है कि वे आज भी जीवंत प्रतीत होते हैं। यहाँ के अधिकांश चित्रों में भगवान बुद्ध, बोधिसत्व, जातक कथाएँ और बौद्ध धर्म से जुड़े जीवन प्रसंगों को दर्शाया गया है। ये चित्र अत्यंत विवरणात्मक और भावनात्मक हैं। इनमें कहानियों को बड़े ही सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इन चित्रों को बनाने के लिए प्राकृतिक रंगों और सामग्रियों का उपयोग किया गया था। इन चित्रों में मानव आकृतियों की भाव–भंगिमा और मुद्राएँ अत्यंत जीवंत और यथार्थपूर्ण हैं। चित्रों में रेखांकन, रंग संयोजन और प्रकाश–छाया का अद्भुत सामंजस्य देखा जा सकता है। अजंता की गुफाओं में पद्मपाणि एक महत्वपूर्ण बौद्ध प्रतिमा है जो महायान बौद्ध परंपरा में अवलोकितेश्वर (करुणा के बोधिसत्व) के रूप में जानी जाती है। पद्मपाणि का अर्थ है पद्म (कमल) को धारण करने वाला। पद्मपाणि को आमतौर पर कमल का फूल हाथ में लिए हुए दर्शाया जाता है, जो पवित्रता और आध्यात्मिकता का प्रतीक है। पद्मपाणि करुणा और दया का प्रतीक हैं। उनका स्वरूप यह दर्शाता है कि वे सभी प्राणियों को संसार के दुखों से मुक्त करने का प्रयास करते हैं। पद्मपाणि की प्रतिमा या चित्रांकन अजन्ता की गुफाओं प्रमुख रूप से पाया जाता है। वहाँ उनकी छवि अत्यंत सुंदर और कलात्मक रूप से उकेरी गयी है। बौद्ध धर्म के अनुयायी उन्हें ध्यान, साधना और उपासना में पूजते हैं। अजन्ता की पहली गुफा में प्रवेश करते ही बायी ओर गुफा की दीवार पर शिवि जातक की कथा का चित्रण मिलता है। इस जातक से दान पारमिता की पूर्ति की अभिप्रेरणा प्राप्त होती है। शिवि की गोद में बैठे कबूतर को चित्रित किया गया है। दूसरे दृश्य में राजा शिवि तराजू के पास खड़े हैं तथा चित्र

के इस जातक कथा को अजन्ता के चित्रकारों ने बहुत ही जीवंतता के साथ चित्रित किया है। चित्र के एक दृश्य में राजा अन्तिम दृश्य में राजा साधु–संन्यासियों से घिरे चित्रित किये गये हैं। जो राजा की दयालुता के लिये उन्हें श्रद्धा भाव से उपहार आदि दे रहे हैं। इसकी बायी भित्ति पर नागराज की सभा का दृश्य है। इस दृश्य में दरबार की चहल–पहल, राजसी ऐश्वर्य और वहाँ पर हो रहे नृत्य को चित्रकारों ने जिस सजीवता से दर्शाया है, वहीं इस चित्र को विशेष बना देता है। इस चित्र में राज दम्पत्ति के पीछे चंवर धारिणी की आकृति कोमल मुद्रा के कारण दर्शनीय है। इन आकृतियों के अतिरिक्त यहाँ फल–फूल, दासी की आकृति, स्त्री–पुरुषों की आकृति के मध्य नृत्य की मुद्रा में केन्द्रीय आकृति महत्वपूर्ण है। नागराज की सभा के उपरान्त शंखपाल जातक की कथा आती है, जो अजन्ता के सर्वोत्कृष्ट चित्रों में से एक है। चित्र के एक दृश्य में चौकोर शिला के ऊपर मगध के राजा और नागराज का वार्तालाप चित्रित है। यहाँ शंखपाल और उनके पीछे राज महिलाओं की मुद्रा बड़ी ही सुष्ठ चित्रित की गयी है। इसमें सामने बैठी एक स्त्री का चित्र है, जो दर्शकों की ओर अपनी पीठ किये है। अपनी मुद्रा के कारण यह बहुत प्रसिद्ध है। कला की दृष्टि से यह चित्र बहुत ही मनमोहक तथा दर्शनीय है। इस चित्र के उपरान्त दायी ओर महाजनक जातक की कथा का चित्रण किया गया है। जिसमें अजन्ता के चित्रकारों के उत्कृष्ट कौशल का परिचय मिलता है। इस कथा में चित्रों की एक लम्बी परम्परा का चित्रण दिखायी देता है। हालाँकि कथा का कम एक प्रवाह में न होकर आगे–पीछे है।

चित्र में दायी ओर महाजनक के जहाज का दुर्घटनाग्रस्त होने का चित्रण है तथा बायी ओर सीवली (पत्नी) द्वारा भौतिक सुख–सुविधाओं की ओर आकर्षित करने के प्रयत्नों का चित्रण किया गया है। जिसमें एक राज पुरुष सुन्दर स्त्री के साथ बैठा हुआ है। एक नर्तकी भावपूर्ण मुद्रा में नृत्य कर रही है। जबकि महाजनक इन सबसे दूर होने की इच्छा की चाह में शांत भाव–भंगिमा में अंकित किये गये हैं। चित्र के अन्तिम भाग में राजा घोड़े पर सवार होकर बाहर जाते हुये चित्रित किये गये हैं और उनके पीछे सीवली उनका अनुसरण करते हुए दिखायी गयी है। पहली गुफा की बायी भित्ति पर विश्व प्रसिद्ध बोधिसत्व का चित्रण है। इस चित्र में कलाकार द्वारा करूणा भाव को बड़े मार्मिक ढ़ग से प्रस्तुत किया गया है। साथ ही विशिष्टता दर्शाने के लिये कलाकारों ने बोधिसत्व की आकृति को अन्य आकृतियों से बड़ा बनाया है। उनके तीन शिखरों वाले भारी मुकुट, गले में मोतियों की माला की चमक दिखाने में अपने पर्याप्त कौशल का परिचय दिया है। यहीं पर एक दृश्य (चित्र), ईरानी दैत्यों के नाम से प्रसिद्ध है, जिसमें हमें एक राजसभा में ईरानी वस्त्र धारण किये कुछ आकृतियों दिखती है। इस चित्र को कुछ

विद्वानों ने पुलकेशियन के दरबार में ईरानी दूत कह कर सम्बोधित किया है। अन्य गुफाओं की भाँति इस गुफा के पाटन पर अनेक सुन्दर अलंकरण पशु–पक्षियों के साथ संयोजित किये गये है, जिनको संरक्षित करने की अत्यधिक आवश्यकता है।

अजन्ता की दूसरी गुफा की बायी भित्ति पर बुद्ध के जन्म से सम्बोन्धित चित्रण किया गया है। इसमें सर्वप्रथम राज महल का दृश्य दिखायी देता है। जहाँ सम्भवतः माया देवी सो रही हैं तथा उनके पास दो–तीन दासियों बैठी हैं। यहीं पर चित्रित दूसरे दृश्य में हम तुषित स्वर्ग में बोधिसत्व को पाते हैं, सिंहासन के दोनों ओर मकर की आकृति बनी हुई है। यहीं पर एक अन्य दृश्य में महामाया और शुद्धोधन का चित्रण है, जो सम्भवतः स्वप्न की चर्चा कर रहे है। इनके अतिरिक्त चित्र में राज दम्पत्ति और दासियों भी चित्रित की गयी है, जिनकी भाव–भंगिमाएँ बहुत ही सुन्दर बनायी गयी हैं। इसी दृश्य में एक रमणी की आकृति खम्भे का सहारा लिये खड़ी है, जैसे वह कोई गणना कर रही हो। जातक कथाओं का चित्रण भारत में कई ऐतिहासिक और सांस्कृतिक स्थलों पर हुआ है। ये स्थल बौद्ध धर्म और भारतीय कला के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। प्रमुख स्थान जहाँ जातक कथाओं का चित्रण हुआ है। अजंता की गुफाओं में जातक कथाओं के भित्तिचित्र बनाए गए हैं। जैसे – वसंतारा जातक, महामूषक जातक, और महासुदर्शन जातक।ये चित्रण रंगों और भव्यता के लिए प्रसिद्ध हैं। जातक कथाओं का चित्रण इन स्थलों पर बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार, कलात्मक अभिव्यक्ति और नैतिक शिक्षा के उद्देश्य से किया गया था।

जनपदों का परवर्ती विकास : राष्ट्र का उदय

विजय परिहार

वैदिक युग की अनेक जातियों के आधार पर तत्कालीन छोटे–मोटे विभिन्न जनपदों का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। वैदिक युगीन आर्येतर जातियों में आन्ध्र, पुलिन्द, मूतिब, शबर, पुण्ड्र और नैषध का नाम मुख्य है। इनके छोटे–छोटे जनपद दक्षिणापथ में थे। अनिल और अज भी इसी प्रकार की जातियाँ थी। अनिलों का उल्लेख ऋग्वेद के पक्थों, भलनसों, शिवों और विषाणिनों में हुआ है। उन्हें त्रित्सु का मित्र बताया गया है। इन लोगों का राज्य कफीरिस्तान के उत्तर–पूर्व में था। उक्त सभी जातियों राजा सुदास द्वारा परुष्णी (गन्धार) में पराजित हुई थीं। वैदिक युग में अजों का उत्तर–पूर्व में कहीं एक छोटा–सा जनपद था, जो कि सुदास के अधीन था। राजा त्रित्सु ने इन अजों को पराजित किया था। निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि उक्त जातियाँ मूलतः आर्य थी या आर्येतर। ऐसा प्रतीत होता है कि मूलतः वे आर्येतर थी और पराजित होने के बाद उन्होंने आर्यों की अधीनता स्वीकार कर आर्यत्व वरण कर लिया था। जातियों और जनपदों का यह विकास–क्रम निरन्तर परिवर्तित और परिवर्द्धित होता गया।

प्राचीन साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि महाभारत युद्ध के अनन्तर बृहदचों के शासनकाल (700 ई.पू.) तक जितने भी जनपद थे उनका आधार जातीय था और उनका शासक भी उसी जाति का हुआ करता था। ऊपर के जनपदों की स्थापना नितान्त जातीय थी। अंग, आन्ध्र, कुरु, पांचाल, भरत और ऐक्याकु आदि के जनपदों को इस दृष्टि से उद्धृत किया जा सकता है। किन्तु बाद में जनपद–स्थापना का यह आधार भी स्थिर न रह सका। उसके बाद (600 ई. पू. से) राज्यों की प्रतिष्ठा जातीयता के आधार पर न होकर भू–सीमाओं के आधार पर निर्धारित होने लगी थी। उदाहरण स्वरूप ऐक्ष्वाकु जनपद ने काशी–कोसल का रूप धारण कर लिया था और अंग आदि जनपद मगध के अन्तर्गत समा गये थे। इस प्रकार जातीयता का आधार गौण पड़ने लग गया था और राज्य के संगठन तथा विकास की स्थितियों निरन्तर प्रशस्त होती जा रही थी। आगे चलकर (300 ई.पू. तक) जन, विश या जाति का महत्व क्षीण होकर एक विशाल साम्राज्य के रूप में उभरने लगा था। जनपद शब्द पहले जन या जाति का बोधक था, किन्तु बाद में वह अनेक जातियों के समूह रूप राष्ट्र का पर्याय बन गया। डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल का अभिमत है कि 600 ई.पू. से 600 ई. तक के समय में राज्य के दो विभाग हुआ करते थे। एक राजधानी और दूसरा देश। राजधानी को पुर या नगर कहते थे और कभी–कभी दुर्ग भी। देश को श्जनपद भी कहते थे, जिसका पर्याय 'राष्ट्र' होता था। जनपद से जानपद शब्द बना है, जिसका अर्थ किया गया है जनपद के निवासी। इसी प्रकार बाद में प्रस्त, प्रदेश या भू–भाग के अर्थ में भी उसे प्रयुक्त किया गया है। किन्तु प्राचीन ग्रन्थों में उसका अर्थ एक सामूहिक संस्था के रूप में भी हुआ है। रामायण में कहा गया है कि पौर, जनपद और नैगम अंजलिबद्ध होकर राम के यौवराज्याभिषेक की प्रतीक्षा कर रहे है– इस प्रकार 'जानपद' शब्द एक सामूहिक संस्था के रूप में प्रचलित रहा। किन्तु जनपद शब्द का प्रयोग परवर्ती साहित्य में राष्ट के पर्याय के रूप में हुआ, जैसा कि दण्डी के दशकुमारचरित (अध्याय 3) से भी प्रामाणित होता है। यही कारण है कि जानपद महत्तर को राष्ट्र मुख्य कहा गया। वैदिक युग से लेकर रामायण–महाभारत के उदय तक के विपुल वाङ्मय में यद्यपि राष्ट्रीय इतिहास के सबल सूत्र अन्तर्निहित है। तथापि उसको किसी शासक विशेष के प्रश्रय में निर्मित नहीं माना जा सकता है। उसका वास्तविक कारण सह है कि जिस

सुदीर्घ कालावधि में उसका निर्माण हुआ उसमें शासक नया रिल का कोई भेद नहीं था। कपिलवस्तु के राजा शुद्धोदन से राष्ट्रीय इतिहास का तिथिबद्ध कम आरम्भ होता है। उसके पुत्र गौतमबुद्ध ने यद्यपि शासक के स्थान पर फकीरी का जीवन वरण किया, फिर भी नहीं एक इतिहास का सम्बन्ध है, उसमें एक नये अध्याय का सूत्रपात हुआ। बुद्ध के समय (500 ई.पू.) से पहले ही पोळप महाजनपदों का अस्तित्व प्रकाश में आ चुका था। अंगुत्तर निकाय (1.213.4252) में उनका नाम इस प्रकार उल्लिखित है–1–अंग, 2–मगध, 3–काशी, 4–कोसल 5–बज्जि, 6–गल्ल, 7–येदि –वत्स, 9–कुरु, 10–पंचाल, 11–मत्स्य, 12–शूरसम् 13–अश्मक, 14–अवंती, 15–गन्धार और 16 कम्बोज। बौद्धों के अतिरिक्त जैन साहित्य में भी प्राचीन भारतीय जनपदों का उल्लेख हुआ है, जिनके आधार पर भारत के बृहत्तर स्वरूप का अनुमान लगाया जा सकता है।

जैनों के भगवतीसूत्र तथा उत्तराध्ययनसूत्र में जनपदों की संख्या चौबीस बतायी गयी है। इस सूची से ज्ञात होता है कि उक्त बौद्ध ग्रन्थ की सूची के अनेक जनपद तब तक अस्तित्वहीन हो गये थे और साथ ही अनेक नये जनपदों का उदय हो चुका था। जैन ग्रन्थों की जनपद–गणना इस प्रकार है–1–अंग, 2–बंग, 3–मगध, 4–मलय, 5– मालव, 6–अच्छ, 7–वच्छ (वत्स), 8–कोच्छ, 9–पाउ (पुण्ड्र), 10–लाड़ (राड), 11 बज्जि, 12–मोलि (मल्ल), 13–कासी, 14–कोराल, 15–अवाह, 16–सम्भुत्तर, 17–दशार्ण, 18–कलिंग, 19–पंचाल, 20–विदेह, 21–गन्धार, 22–सौबीर, 23 द्रविड़ और 24–गौड़। इन बौद्ध–जैन–ग्रन्थों में उल्लिखित जनपदों की इतिहास प्रसिद्ध राजधानियों के नाम थे– दंतपुर, मिथिला, चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कोशाम्बी और काशी। बौद्ध–ग्रंथों की अपेक्षा जैन–ग्रंथों की उक्त सूची पर्याप्त परवर्ती प्रतीत होती है। बुद्धयुगीन भारतीय इतिहास से विदित होता है कि तत्कालीन भारत में धार्मिक एवं वैचारिक नवोत्थान के साथ–साथ राष्ट्रीय संगठन के आधार भी स्थिर एवं सुदृढ़ हो चुके थे। इस युग में राजशासित जनपदों के अतिरिक्त अनेक गणतन्त्रों की भी स्थापना हो चुकी थी। कपिलवस्तु के शाक्य–कुल में बुद्ध का जन्म हुआ था। यह शाक्य–कुल सामाजिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से सर्वाधिक उन्नत था। बुद्धयुगीन कला–केन्द्रों में भी उसकी प्रमुखता थी। वहाँ अनेक कलाओं तथा विद्याओं का एक विशाल शिल्प विद्यालय था, जहाँ बुद्ध ने बाल्यकाल में अनेक शिल्पों की विधिवत् शिक्षा प्राप्त की थी। ललितविस्तर के अनुसार बुद्ध ने अनेक प्रकार के कला–कौशलों की प्रतिस्पर्धा में विजय प्राप्त करके यशोधरा को वरण करने में जनता के समक्ष अपनी असहज योग्यता को सिद्ध किया था। कोसल जनपद का अस्तित्व बुद्ध से पहले का है। बौद्ध तथा अन्य ग्रन्थों में कोसल और काशी जनपदों का एक साथ उल्लेख हुआ है। उसका कारण यह था कि इन दो जनपदों के शासकों में लम्बे समय तक कभी प्रतिस्पर्धा और कभी घनिष्ठ मित्रता के सम्बन्ध बनते बिगड़ते रहे। जब कोसल पर राजा दीधिति का शासन था, काशी के राजा ब्रह्मदत्त ने उसको पराजित करके कोसल पर अपना अधिकार कर लिया था। उसके बाद कोसल के राजा कंस ने काशी पर आक्रमण करके उस पर विजय प्राप्त कर ली थी। बौद्धयुगीन भारत में कोसल की बड़ी ख्याति थी। बुद्ध के समय वहाँ राजा प्रसेनजित् का राज्य था। प्रसेनजित् बड़ा दानी और यशस्वी राजा हुआ। वह बुद्ध का अनुयायी था। राजा प्रसेनजित् तथा बुद्ध के सम्बन्धों का साक्षी भरहुत का एक शिलापट्ट है। इस शिलापट्ट पर राजा प्रसेनजित् को चार घोड़ों पर आरूढ़ राजप्रासाद से बाहर निकलते हुए दिखाया गया है। उसके साथ हाथी–घोड़ों पर सवार तथा पैदल सेना का जलूस है। शिलापट्ट के ऊपरी भाग में एक दुतल्ला घर है। उसके भूमितल पर स्तम्भयुक्त खुला मण्डप बना हुआ है, जिसके मध्य में दो उपासक बैठे हुए हैं और उनके मध्य धर्मचक्र अवस्थित है। ये दो उपासक बुद्ध और प्रसेनजित् हैं। इस दृश्य में राजा के धर्मचक्र ग्रहण करने का भाव अंकित है। जिस ऊपरी दुतल्ले पर यह दृश्य अंकित है, वह उस स्थल का प्रतीक है, जहाँ पर राजा प्रसेनजित् की बुद्ध से अन्तिम बार भेंट हुई थी।

कोसल जनपद के विस्तार के लिए राजा प्रसेनजित् ने अन्य राजाओं पर आक्रमण किया और पाँच छोटे–छोटे राज्यों को हस्तगत कर लिया था। मगध के राजा अजातशत्रु से भी उनका युद्ध हुआ था। बुद्ध के पूर्व से ही अवन्ति का गौरव बना हुआ था। बुद्ध वो समकालीन अवन्ती के राजा पज्जोत ने कौशाम्बी के राजा उदयन और सूरसेनों के राजा अवन्तिपुत्त से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये थे। आरम्भ में वह स्वभाव का क्रूर (चण्ड) शासक था, किन्तु उसके गुरु महाकच्चायन के प्रभाव से उसका सम्पर्क बुद्ध से हुआ था। उसने बुद्ध को सादर आमन्त्रित किया और बुद्ध के सात उपदेशों को सुनकर वह स्वयं बौद्धानुयायी हो गया था। उसके बाद तो सारी अवन्ती नगरी बोद्ध बन गयी थी। वत्स जनपद का अस्तित्व बुद्ध के समय स्थापित हुआ। कौशाम्बी उसकी राजधानी थी। बुद्ध के समय वस जनपद का शासक उदेन (उदयन) था। भास के स्वप्नवासवदत्त नाटक, हर्ष कृत प्रियदर्शिका नाटिका और बौद्ध–ग्रन्ध धम्मपद (कट्ठकथा) में राजा उदयन और उनकी पत्नी रत्नावली तथा प्रेयसी वासवदत्ता की कथाएँ विस्तार से कही गयी हैं। राजा उदयन ने अवन्ती अनंग और कलिंग जनपदों तक अपने प्रभुत्व का विस्तार किया था। मगध जनपद का अस्तित्व बुद्ध से पूर्व स्थापित हो चुका था, किन्तु बुद्ध के समय से ही उसके गौरव की वृद्धि हुई। इस गौरव को प्रदान करने वाले यशस्वी शासक का नाम था–बिम्बिसार (543–491 ई.पू.) और उनका पुत्र अजातशत्रु (491–459 ई.पू.)। ये दोनों पिता–पुत्र बुद्ध के समकालीन थे। कोसल के राजा प्रसेनजित की बहन के साथ विम्बिसार का विवाह हुआ था। राजा बिम्बिसार धर्म का उदार और समन्वयवादी था। इसीलिए बोद्ध तथा जैन साहित्य तथा समाज में समान रूप से उसको मान्यता प्राप्त थी। अजातशत्रु ने भी पिता की परम्परा की रक्षा की और उसी प्रकार की लोकप्रियता को अर्जित किया।

प्राचीन भारत की कृषि सामाजिक व्यवस्था

यतीन्द्र तिवारी

सामाजिक दृष्टि से ऋग्वैदिक भारत अत्यन्त सुगठित, सम्पन्न, नियत–कर्मों में अविरत और वर्गगत सीमाओं में नियंत्रित था। उसे आत्म–विकास की पूरी स्वतंत्रता प्राप्त थी। तत्कालीन सामाजिक जीवन की सुव्यवस्था का प्रतीक परिवार था, जो कि संयुक्त होता था। परिवार का बड़ा बूढ़ा या पति उसका स्वामी या मुखिया और पत्नी स्वामिनी होती थी। परिवार के सभी सदस्य परिवारवृद्ध की आज्ञा पालन करते थे। सदाचार की श्रेष्ठता सर्वोपरि थी और इस कारण विधवा–विवाह, बहुपतिक तथा बहुपत्नीक प्रथा का प्रचलन नहीं था। नव वधू जब पितृगृह से परिणीता होकर पतिगृह में प्रविष्ट होती थी तो उसे परिवार के ऊपर अधिकार रखने वाली साम्राज्ञी समझा जाता था। वैदिक युग की संयुक्त परिवार–व्यवस्था पितृसत्तात्मक थी। पिता की सम्पत्ति पर पुत्र का उत्तराधिकार होता था, किन्तु पुत्राभाव में पुत्री को भी उत्तराधिकारिणी माना जाता था। ऋग्वेद के एक सन्दर्भ से गोद लेने की प्रथा का भी आभास होता है। गाय, अश्व आदि पशु, हिरण्य, दास–दासी और भूमि, सम्पत्ति के अन्तर्गत परिगणित होते थे। भूमि का बँटवारा खेतों के रूप में किया जाता था। धर्मसूत्रों में सामाजिक आधारों के सम्बन्ध में कुछ मतभेद देखने को मिलता है। सारे वैदिक भारत के एक जैसे आचार–नियम नहीं थे। उदाहरण के लिए 'बोधायन धर्मसूत्र' में दक्षिण भारत का विशेष आचार मातुल कन्या या फुफेरी बहन से विवाह करना निहित था, जो कि आज भी प्रचलित है। इसी प्रकार उत्तर भारत में शस्त्रास्त्र–वाणिज्य, ऊन का व्यापार और समुद्र यात्रा का प्रचलन था। जिन्हें दक्षिण भारत में गर्दा समझा जाता था। ऋग्वैदिक भारत के आर्थिक स्रोत कृषि, पशुपालन तथा विभिन्न उद्योग थे। यही कारण है कि वेदमन्त्रों में महिमामयी भूमि का मुक्तकण्ठ से स्तवन किया गया है। वैदिक युग में कृषि को इतना अधिक महत्व दिया जाता था कि उसी से आर्यत्व तथा आर्यभिन्नत्व (ब्रात्य) की पहचान होती थी। कृषि न करने वाले लोगों को ब्रात्यों की निम्न श्रेणी में गिना जाता था। आज के कृषक जीवन में हल लगाने से लेकर अन्न को घर में लाने तक की समस्त कार्य–पद्धति वैदिक युग में भी लगभग तदनुरूप ही अपनायी गयी थी। शतपथ ब्राह्मण में कृषि की जुताई, बुआई, लवाई और मड़ाई आदि का उल्लेख होने से तत्कालीन कृषि–व्यवस्था का पता चलता है। कृषि कार्य बहुत उन्नति पर था और कृषि सम्बन्धी साधनों का पर्याप्त विकास हो चुका था। कृषि द्वारा अनेक प्रकार के धन्धों का उत्पादन होता था। आज की भाँति लोगों को मृगया का शौक था। आर्थिक उन्नति के साधनों में काष्ठ तथा धातु की विभिन्न वस्तुओं का निर्माण, वस्त्र उद्योग और चर्म उद्योग की प्रधानता थी। 'वाजसनेय सहिता' में पेशेवरों की जो सूची दी गयी है, उससे पता चलता है कि विभिन्न उद्योग–धन्धों के विकास के कारण समाज में वर्ण–व्यवस्था को गौणता और पेशों को प्रमुखता प्राप्त थी व्यापार के लिए वस्तु–विनिमय और धन द्वारा क्रय होता था। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर व्यापार होता था। लोगों के समुद्री

मार्गों द्वारा विदेशों के साथ भी व्यापारिक सम्बन्ध थे। गाँव सुशासित ढंग पर विकास करते थे। गाँव की व्यवस्था के लिए मुखिया होता था। गाँवों की आजीविका का प्रमुख आधार कृषि तथा पशु–पालन था। कृषि के बँटवारे का ढंग ठीक आजकल की तरह था। स्त्री–पुरुष नाना प्रकार के वस्त्र धारण करते थे। लोग अच्छे वस्त्रों तथा आभूषणों से अपने शरीर को अलंकृत करते थे। घुड़दौड़ और अक्षक्रीड़ा मनोविनोद के साधनों में परिगणित थे। इसी प्रकार समाज की रागीत, नृत्य और वाद्य में भी अच्छी अभिरुचि थी। विभिन्न भाँति के वाद्यों का प्रयोग भी किया जाता था। मानव समाज में सभ्यता का उदय न्याय और शासन की स्थापना के बाद हुआ। भारत में न्याय और शासन की व्यवस्था के लिए धर्मशास्त्र नाम से एक स्वतन्त्र शास्त्र का निर्माण हुआ, जिसमे मानव–समाज के कर्तव्यों का निर्धारण किया गया है। उसके अंतर्गत वर्ण, आश्रम और उनके कर्तव्य दायित्व, विशेषाधिकार, राजधर्म, व्यवहार (कानून–विधि) आपद्धर्म, प्रायश्चित्त, शांति और कर्मविपाक आदि सामाजिक नीति–नियमों

की सुव्यवस्था के लिए सूक्ष्माति–सूक्ष्म विचार किया गया है। इस दृष्टि से धर्मसूत्र और स्मृतियाँ धर्मशास्त्र के अन्तर्गत परिगणित हुए। धर्म का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। धर्म किसी एक व्यक्ति तथा वर्ग की वस्तु नहीं है। समस्त मानव–समाज में धार्मिक व्यवस्था स्थापित करना ही उसका लक्ष्य है। व्यक्ति और समाज को अनुशासित करके उसे उत्तरोत्तर उन्नति की ओर ले जाना भी उसका एक उद्देश्य है। सामान्यतः धर्म के श्रौत और स्मार्त दो विभाग हैं। श्रऔतधर्म के अन्तर्गत उन कृत्यों एवं संस्कारों का वर्णन है, जिनका सम्बन्ध वेदों तथा ब्राह्मण–ग्रन्थों से है। स्मार्तधर्म के अन्तर्गत वे विषय सम्मिलित हैं, जिनका सम्बन्ध विशेष रूप से धर्मसूत्रों तथा स्मृतियों से है।

सामाजिक सम्बन्धों की दृष्टि से, परम्परा से सामान्यतः यह नियम चला आ रहा है कि प्रत्येक व्यक्ति अपना संस्कार परिष्कार किये बिना दूसरे का हित–साधन नहीं कर सकता है। इसलिए धर्मशास्त्र में सर्वप्रथम व्यक्ति की आत्मोन्नति का मार्ग बतलाया गया है। आत्मोन्नति के उच्च लक्ष की ओर अग्रसर होने के लिए सत्य का अनुष्ठान आवश्यक है। जीवन के लिए पहला निर्देश है सत्य बोलना सत्यानुचरण से अप्रच्छन तथा आत्म–गुणों का विकास होता है। अहिंसा, दया, शाति, असूया, शौच, अनायास मगल, अकार्पण्य और अस्पृहा–ये आठ आत्म–गुण मनुष्य में नैतिकता और सदाचार का आधान करते हैं। नैतिकता मनुष्य को यह निर्देश करती है कि यदि कोई व्यक्ति आत्मसुख का अभिलाषी है, तो उसे दूसरे के आत्मसुख का भी ध्यान रखना चाहिए। इस प्रकार जिसके अपने सुख–दुख दूसरे के सुख–दुःख पर अवलम्बित है। उससे निश्चित ही यह आशा की जा सकती है कि वह सामाजिक सद्भाव के प्रति निष्ठावान होगा। एक–दूसरे के प्रति सद्भावना रखता होगा यही भारतीय संस्कृति की अपूर्वता है। इसका यह सिद्धान्त कि जो अपने लिए प्रतिकूल है। वह दूसरों के सम्बन्ध में भी चरितार्थ नहीं करना चाहिए (आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न सामचरेत्)। आदर्श और नैतिकता का उज्ज्वल उदाहरण है। इस उदात्त नैतिकता के निर्माण और व्यावहारिक जीवन में उसको चरितार्थ करने के लिए जिन ग्रन्थों में उपाय तथा विधान बताये गये हैं वे धर्मशास्त्र या स्मृतियों के नाम से कहे गये हैं। स्मृति शब्द से बहुधा श्लोकबद्ध स्मृतियों को ग्रहण किया जाता है। किन्तु जहाँ–जहाँ श्रुति के साथ स्मृति का उल्लेख हुआ है वहाँ–वहाँ उसका अधिक व्यापक अर्थ में उल्लेख हुआ है।

श्रुति से जिस प्रकार वेद, ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषदों का बोध होता है, उसी प्रकार स्मृति के अन्तर्गत षड़वेदाग धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण, अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र आदि अनेक विषयों को ग्रहण किया गया है। श्रुति और स्मृति का इसी रूप में व्यापक अर्थबोध होता है। बाद की परम्परा में स्मृति को धर्मशास्त्र का पर्यायवाची मान लिया गया और इसी रूप में वह सम्प्रति प्रचलित है। स्मृति नामकरण इसलिए किया गया कि परम्परा द्वारा सूत्रकाल के पूर्व तक की सामाजिक व्यवस्था में जो विधि–विधान, आचार–विचार और नीति–नियम मौखिक (स्मृति) रूप में सुरक्षित रहते आ रहे थे, उन्हीं को जब ग्रन्थ रूप में निबद्ध किया गया तो उन्हें रमृति नाम दिया गया। स्मृतियों के आधार कल्पसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र हैं। धर्मसूत्र स्मृतियों के अधिक निकट हैं। उन्हीं के आधार पर श्लोकात्मक स्मृतियों की रचना हुई है।

स्मृतियों में विष्णुस्मृति ही एकमात्र ऐसी कृति है, जो श्लोकबद्ध न होकर सूत्र शैली मैं है। पुराणों की भाँति स्मृतियों की संख्या भी अठारह है। उनका नामकरण उनके निर्माताओं के नाम से ही प्रचलित हुआ है। मनु, याज्ञवल्क्य, अत्रि, विष्णु, हारीत, उशनस्, अंगिरा, यम, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, दक्ष, गौतम, वशिष्ठ, नारद, मृगु आदि स्मृतियों के निर्माणकर्ता हैं। उनमें चार स्मृतियाँ मनुस्मृति, विष्णुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति और नारदस्मृति विश्रुत एवं लोकप्रिय हैं। इन स्मृतियों के ही समान महाभारत को भी धर्मसंहिता के रूप में मान्यता दी गयी है। शान्ति पर्व और अनुशासन पर्व में धर्म तथा अर्थ की गम्भीर परिभाषा की गयी है। इस कारण धार्मिक तथा सामाजिक दृष्टि से इन दोनों पर्वो का विशेष महत्व है। इस आधार पर महाभारत को व्यासस्मृति के रूप में मान्यता प्राप्त है। उसमें परम्परागत धर्म तथा व्यवहार (कानून) को वही मान्यता दी गयी है, जो स्मृतियों को प्राप्त है। यद्यपि स्मृतियों का आधार विशेष रूप से धर्मसूत्र रहे हैं। फिर भी मनुस्मृति में अनेक नयी बातों का समावेश हुआ है।

स्मृतियों में मनुस्मृति का इस दृष्टि से भी विशेष महत्व है कि उसमें अतीत के युग–युगों की परिवर्तित परिस्थितियों, व्यवस्थाओं तथा लोकाचारों को सामयिक एवं व्यवहारोपयोगी बनाकर प्रस्तुत किया गया है। मनुस्मृति में लोकदृष्टि का समादर होने के कारण उसको सर्वाधिक लोक–सम्मान और शास्त्र–मान्यता प्राप्त है। स्मृतियाँ मुख्यत विधि–ग्रन्थ हैं। उनमें धर्म के व्यवहार (कानून) पक्ष को विशेष रूप से ग्रहण किया गया है। उनमें धर्म के उस पक्ष को गौण माना गया है। जिसका सम्बन्ध पारलौकिकता तथा आध्यात्मिकता से है। ऐहिक समाजविद्या त्रयी, वार्ता और दण्डनीति का निरूपण अर्थशास्त्र में किया गया है। सांस्कृतिक अभ्युदय की दृष्टि से धर्मशास्त्र की निरूपक स्मृतियों का दिशेष महत्व है। सदाचार, न्याय, और सद्व्यवहार (नीति–नियम) संस्कृति के आधार स्तम्भ हैं और स्मृतियों में इन्हीं पर विचार हुआ है। उनके प्रभाव से ऐसे समाज की रचना की गयी है, जो उदात्त, उदार और मानव–कल्याणकारी आचारों का पालनकर्ता है। मूल मानवाधिकारों की सुरक्षा–व्यवस्था करके स्मृतियों ने भारतीय संस्कृति के गौरव को बढ़ाया है। उन्होंने श्रुतियों की परम्परा का प्रवर्तन करके इस राष्ट्र के सांस्कृतिक अभ्युदय को अक्षुण्ण बनाये रखा। आधुनिक जनतन्त्र की जननी वैदिक परिषदों को प्राचीन भारत में न्याय तथा प्रशासन की दृष्टि से सर्वोच्च सम्मान प्राप्त था। वे सर्वमंगलकारी धर्म पर आधारित थीं। समाज और राजा, परिषदों द्वारा ही शासित होते थे। वैदिक युग में ऐसी परिषदों के अस्तित्व के द्योतक अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं।

उज्जयिनी का शक सातवाहन काल

डॉ. किरण शर्मा

उज्जयिनी के शकों का प्रथम आक्रमण महेन्द्र गर्दभिल्ल के समय कालकाचार्य प्रेरित था। महेन्द्र गर्दभिल्ल ने कालकाचार्य की बहन सरस्वती का हरण कर गंधर्व विवाह कर लिया था। उसके कारण कोप में आकर कालकाचार्य ने सिंध के शाहनुशाही शकों को निमंत्रित कर महेन्द्र को हराया था। वह संभवतः सातवाहनों के आश्रय में चला गया। यहाँ उज्जयिनी में शाहानुशाहियों का आधिपत्य अल्पकालिक था। समृद्ध जैन परम्परा, हाल की गाथा सप्तशती में उल्लेखित विक्रम ने, जिसका नाम 'कृत' था और जिसकी मृतिका मुद्रा पर कतस उजेनीय लिखा मिला है तथा जिस पर मकारयुक्त स्वस्तिक अंकित है, इनके राज्य की समाप्ति की। इस बीच वाशिष्ठी पुत्र शातकर्णी व गौतमी पुत्र पुलुमायी तथा यज्ञसेन शातकर्णियों का बीच–बीच में आधिपत्य रहा। ग्रीक राज्यों व व्यापारियों से उज्जयिनी का सम्बन्ध रहा हेगा क्योंकि उज्जयिनी में मिट्टी की ग्रीक मुद्राएँ या 'सीले' पर्याप्त प्रमाण में मिली हैं। इनमें रस्सी में पिरोने का ऊपर अलंकरणयुक्त गोल रहता था तथा नीचे गोल लोलक सदृश आकार पर अपोलो, डायना या कभी राजा–रानी, अन्नदेवता व कमल अंकित रहता था।

अभी तक ऐसी दस मृणमुद्राएँ उपलब्ध हुई हैं। रोमन एम्फोरा (सुरापात्र) भी यहाँ बड़े प्रमाण में मिलते हैं। शकों ने प्रथम शताब्दी के पश्चात् पुनः उज्जयिनी पर अपना आधिपत्य जमाया– उनकी अनेक चाँदी की तथा ताँबे पर चाँदी के लेपन वाली मुद्राएँ उज्जैन से मिली हैं। अभी तक जो शक मुद्राएँ मानी जाती है। यथा हनुगम बलाक, माहू, दास सौम, ये निश्चित उज्जयिनी से मिली है। इसका प्रमाण नहीं है। आद्यमालवों की अनेक मुद्राएँ उज्जैन से मिलती हैं, जिन पर मगज (संभवतः मालव गणस्य जयः का संक्षिप्त रूप) गज, मप आदि लिखा होता है और जो आद्यमालव वंश की है, जिनमें कृत विक्रम प्रमुख था तथा आद्यशकों को हराकर जिसने कृत मालव या विक्रम सम्वत् का प्रवर्तन किया। आज वह पुनः अपनी कतस उज्जैनीय मुद्रा के कारण एवं वर्ष 2009 में म.प्र. शासन द्वारा महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ उज्जैन की स्थापना कर विक्रमादित्य संबंधित पुरासाक्ष्य खोजे। आज विक्रमादित्य काल इतिहास में एक युग के साथ मूर्ति लेख, मुद्रा लेख, मुद्राएँ, सीले, साँचे, वस्त्र, आभूषण और अन्य पुरा साक्ष्यों के ऐतिहासिक प्रमाण के साथ प्रतिष्ठित है। प्रथम शताब्दी के आसपास की काँच की मुद्राएँ भी उज्जैन से मिली हैं, जिनमें सूँड उठाया हुआ हाथी, ध्वज दण्ड, स्वस्तिक चिह्न अंकित हैं। ऐसी एक मुद्रा महेश्वर से प्राप्त हुई है तथा उज्जयिनी से दो मिली हैं। काँच उद्योग की प्रगतिशीलता का यह द्योतक है। काँच के ताटंक चक्र व चूड़ियाँ तो इस काल की मिलती ही हैं। इसके पश्चात् रुद्रदामन, जीवदामन, रुद्रसेन, रुद्रसिंहादि शक राजाओं का आधिपत्य दो शताब्दी तक मध्यांतरों से चलता रहा। मालव–औलिकर कालः पुनश्च तीसरी चौथी शताब्दी ईसवीं में मालवगण ने अपना सिर उठाया और उज्जयिनी पुनश्च मालवगण राज्य के रूप में प्रतिष्ठित हुई। विष्णु, रुदिल, रविल राम, अमात्य महानंद पुत्र– नंद आदि ने यहाँ स्वतंत्र उदाहरण बनाए और गुप्तों की साम्राज्य शक्ति से आक्रमण की दृष्टि से मालवा के अवंती क्षेत्र में गुप्तों का अधिपति जमने नहीं दिया। इसी कारण उज्जयिनी और उसके आसपास गुप्त शिल्पों, गुप्त लेखों व गुप्त मुद्राओं का अस्तित्व ही नहीं है। पश्मिोत्तर मालवा में भी उनका वर्चस्व नगण्य था, क्योंकि कुमारगुप्त के राज्य का उल्लेख मात्र बंधुवर्मन के लेख में है, पर मालव संवत् का प्रयोग कर अपनी अस्मिता तो उसने बनायी ही है। मालव–औलिकर की शक्ति ही हूणों को पराजित कर सकी। मालव राजा रामगुप्त निश्चित ही उज्जयिनी विदिशा का राजा था तथा वह गुप्त रामगुप्त से भिन्न था। अन्यथा उसकी मुद्राएँ अयोध्या, कौशाम्बी आदि स्थानों पर भी मिलतीं। इसका आधिपत्य एरण, विदिशा व उज्जयिनी पर रहा। इसने सिंह, गरुड़, शंख, चक्र, स्वस्तिकयुक्त मुद्राएँ प्रचलित कीं तथा एक मुद्रा धनुर्धारी भी है। यह संभवतः भागवतानुयायी तथा जैनाश्रयी था तथा इसके राज्य में विदिशा में जैन प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित की गयी। मन्दसौर क्षेत्र में उन दिनों 200 से अधिक वर्ष तक औलीकरों का आधिपत्य रहा तथा उनमें से कुछ उज्जयिनी पर भी राज्य करते रहे। श्री रुणवाल को मिले मन्दसौर अभिलेख में तथा म.प्र. पुरातत्व विभाग व विक्रम विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित मन्दसौर उत्खनन से कुछ नये राजाओं का बोध होता है। औलीकर वंश का प्रारम्भ किसी सोम नामक आद्य पुरुष से हुआ तथा द्वितीय नाम वीरसोम, पुष्यसोम आदि हैं और फिर नगरी व दशपुर की अन्य शाखाएँ आती हैं।

दशपुर शाखा में वर्मा, वर्धन तथा धर्मा नामान्त से नाम पाये जाते हैं, जिनमें वर्मा नाम पूर्व के तथा धर्मा तथा वर्धन बाद के हैं। नये अभिलेख में भास्कर वर्मा तथा कुमार वर्मा तथा कृष्ण का उल्लेख है। सभी पराक्रमी थे तथा पुण्यप्राप्ति हेतु विजयोपरांत इन्होंने विशाल जलाशय बनाये। औलीकर उज्जयिनी में राज्य करते थे ऐसी मान्यता है। औलीकरों के सर्वाति पश्चात् का लेख भानपुरा के इन्द्रगढ़ हनुमान के स्थान पर मिला है। यहाँ भी भूमिदान का उल्लेख है। मंदसौर में एक भव्य प्रासाद के अवशेष मिले हैं, जिसके सोपान मार्ग के पास के कक्ष से काँच पर अंकित दो अभिज्ञान मुद्राएँ मिली हैं। जिन पर श्रीप्रकाश धर्म अंकित है। यहाँ संभवतः यशोधर्म का एक सिक्का ढालने का ठप्पा मिला है, जिस पर ईश्वर नाम अंकित है। यह भी मन्दसौर के औलीकर वंश का ही कोई राजा होना चाहिये। भानपुरा के दो अभिलेखों से लगता है कि मालवा पर औलिकरों का आधिपत्य गुर्जर प्रतिहारों के कारण समाप्त हुआ हो तथा उनका स्वामित्व भी बाद में राष्ट्रकूटों ने समाप्त कर दिया।

पुस्तक चर्चा/मिथिलेश यादव

साहित्य में वर्णित इंद्रप्रस्थ

प्राचीन नगरों का इतिहास प्राकृतिक, राजनीतिक तथा सामाजिक उथल–पुथल के साथ जुड़ा हुआ है। विश्व की प्राचीनतम राजधानी इन्द्रप्रस्थ (वर्तमान दिल्ली) भी इसका अपवाद नहीं है। वर्तमान पुस्तक में अनेक ग्रंथों के आधार पर इन्द्रप्रस्थ के इन्हीं पक्षों का विवेचन है। इन्द्रप्रस्थ राजनीतिक ही नहीं अपितु धार्मिक तथा सांस्कृतिक महत्व का केन्द्र भी रहा है। इंद्रप्रस्थ को महाभारत में संदर्भित किया गया है। यह शांति के लिए माँगे गए पाँच स्थानों में से एक था और एक विनाशकारी युद्ध को टालने के लिए, कृष्ण ने प्रस्ताव दिया कि यदि हस्तिनापुर पांडवों को केवल पाँच गाँवों, अर्थात् स्वर्णप्रस्थ (सोनीपत), पर्णप्रस्थ (पानीपत), व्याघ्रप्रस्थ (बागपत) तिलप्रस्थ (तिलपत) और वरूप्रस्थ (वरूपत या बरनामा) तब वे संतुष्ट होंगे और कोई और माँग नहीं करेंगे। दुर्योधन ने यह कहते हुए दृढ़ता से मना कर दिया कि वह सूई की नोंक जितनी भी भूमि नहीं देगा। इस प्रकार, महान युद्ध के लिए मंच तैयार किया गया था जिसके लिए महाभारत का महाकाव्य सबसे अधिक जाना जाता है। महाभारत इंद्रप्रस्थ को पांडवों के घर के रूप में दर्ज करता है, जिनके कौरवों के साथ युद्धों का वर्णन है। यह मात्र तीर्थ नहीं, महातीर्थ है। मथुरा–वृन्दावन की तरह इस नगर की भी वार्षिक परिक्रमा होती थी। लेखक डॉ. जय नारायण कौशिक की पुस्तक साहित्य में वर्णित इंद्रप्रस्थ में इस पक्ष को भी उजागर किया गया है। इन्द्र, इन्द्रप्रस्थ क्षेत्र, इन्द्रप्रस्थ तीर्थ का माहात्म्य इसके धार्मिक तथा सांस्कृतिक पक्ष को प्रकट करते हैं। महाभारतकालीन इन्द्रप्रस्थ के संदर्भ में तत्कालीन राजनीति, पांडवों का सद्गृहस्थ, इन्द्रप्रस्थ का राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय रूप का चित्रण मूल संस्कृत श्लोकों को उद्धृत करके प्रस्तुत गया है। इन्द्रप्रस्थ–नरेश युधिष्ठिर के पूर परवर्ती नरेशों का विवरण यहाँ उपलब्ध है, जिसका समापन पृथ्वीराज चौहान को पांडव वं अंशावतार कहकर किया गया है।

कृष्ण यजुर्वेद, महाभारत तथा पुराणों के अतिरिक्त बौद्ध तथा फारसी साहित्य में भी इन्द्रप्रस्थ का वर्णन मिलता है। वैदिक वाङ्मय, महाभारत तथा पौराणिक साहित्य में यत्र–तत्र प्राप्त विकीर्ण संदर्भों के अनुसार देश की राजधानी दिल्ली क्षेत्र का अति प्राचीन काल से धार्मिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक महत्त्व रहा है। यहाँ यमुना के तट, तपस्या के वन, विश्व के प्राचीनतम पर्वत अर्बुद के छोर तथा गौचारण भूमि ने सदा सर्वदा से लोगों को आकृष्ट किया है। किन्तु युगों से इन्द्रप्रस्थ क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध इस पुण्यभूमि का एक ही ग्रंथ में श्रृंखलाबद्ध बहुआयामी सांस्कृतिक इतिहास अभी तक उपलब्ध नहीं है।

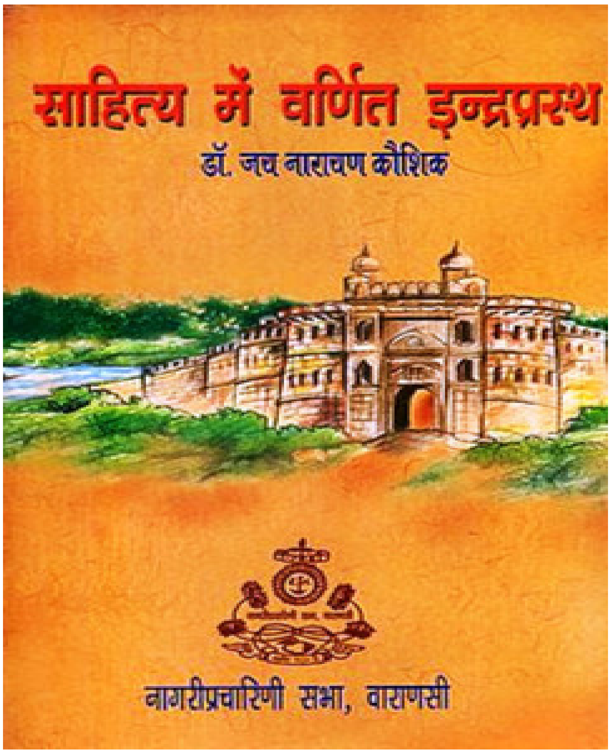

वैदिक युग में न्यायकारी इंद्र ने राष्ट्र हित में सर्प आचरणधारी असुर अर्बुद का वध बर्फ से किया था। इंद्र द्वारा अर्बुद के वध का संदर्भ ऋग्वेद में इंद्रप्रस्थ नगर में वही इंद्र की स्मृति उपलब्ध है अरावली पर्वत की अरकार श्रृंखलाओं में बनी हुई है। ऐतिहासिक दृष्टि से महाभारत के अनुसार युधिष्ठिर द्वारा खांडवप्रस्थ पर इन्द्रप्रस्थ नगर का निर्माण करवाने से पूर्व इधर आयु, पुरुरवा, नहुष, ययाति प्रभृति प्रतापी राजा राज कर चुके थे। इनमें से अनेक राजा सतयुगकालीन हैं। युधिष्ठिर के बाद भी इधर पुरुवंश के अनेक प्रतापी राजा हुए हैं। पौराणिक साहित्य में इन्द्रप्रस्थ के अनेक स्थानों पर संदर्भ उपलब्ध है। महाभारत के बाद इन्द्रप्रस्थ का सर्वाधिक वर्णन पद्म पुराण में आया है। इस पुराण के उत्तर खंड में 199 से 222 अध्याय तक इस स्थान से संबंधित पारलौकिक, लौकिक तथा धार्मिक कथाएँ उपलब्ध हैं। लगता है जिस प्रकार आजकल नगरों की ओर सैलानियों, उद्योगपतियों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए अनेक प्रलोभन दिए जा रहे हैं उस काल में धार्मिक लाभ प्रलोभन सर्वोपरि रहा होगा। महाभारत काल में राजसूय यज्ञ के समय इन्द्रप्रस्थ का जो रूप दर्शाया गया है उससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि इस स्थान का महत्व राष्ट्रीय ही नहीं अंतर्राष्ट्रीय भी था।

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ, स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन के लिए बिड़ला भवन, देवास रोड, उज्जैन-456010 से प्रसारित. सम्पादक : श्रीराम तिवारी, समन्वयक : राजेश्वर त्रिवेदी.

आलेख सेवा नि:शुल्क वितरण के लिए. फोन: 0734-2521499, 0755-2660407 Email:mvspujjain@gmail.com, vikramadityashodhpeeth@gmail.com